प्राचीन काल में विवाह का स्वरूप

शिवनाथ चौधरी

प्राचीन धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह को एक धार्मिक कृत्य माना जाता है। मानव जीवन की चार आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास में विभक्त था, उसमें गृहस्थ आश्रम को सबसे प्रधान व आधारभूत माना गया है। प्रत्येक युवक–युवतियों का कर्तव्य है कि विधिपूर्वक विवाह करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करें। पितृऋण से उऋण होने के लिए विवाह तथा संतान उत्पन्न करना प्रत्येक मनुष्य का ऐसा कर्तव्य था। दूसरी बात यह कि पत्नी के बिना कोई भी यज्ञ व धार्मिक कृत्य पूरा नहीं हो सकता था। अतः विवाह करना प्रत्येक मनुष्य का धार्मिक कृत्य हो जाता है। विवाह, प्रेम की अभिव्यक्ति और विकास का साधन है। विवाह केवल रूढ़ि नहीं है अपितु समाज की अंतर्दशा है। यद्यपि विवाह के आदर्श बदलते रहते हैं फिर भी यह मानव का साहचर्य का एक स्थायी रूप प्रतीत होता है। यह प्रकृति का प्राणीशास्त्रीय लक्ष्यों के बीच तालमेल बैठाता है। स्पष्ट है कि विवाह का मूलाधार स्त्री पुरूष का संबंध है। ऐसे संबंध को सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है और इसी स्थिति में विवाह एक सामाजिक संस्था मानी जाती है।